आपने लिखा

संदर्भ का अंक-103 मिला जिसमें दो लेख जो सबसे अच्छे लगे, वे हैं *भोजन और बीमारी* और *क्या एंटीबायोटिक दवाएँ बेकार होती जा रही हैं?*

पहले लेख को पढ़कर लगा कि अपने स्कूली जीवन में जीव-विज्ञान की छात्रा होने और स्नातक में फिज़ियोथेरेपी कोर्स के दौरान मेडिकल के कुछ विषयों को पढ़ने के बाद भी कभी इस तरह किसी बीमारी के बारे में जानने-पढ़ने में इतिहास के सन्दर्भों का सहयोग नहीं मिला। होता तो और रुचि ले पाती और शायद शोध की तरफ भी कुछ झुकाव बन पाता। हालाँकि यह लेख आइज़ेक एसीमोव के लेख का अनुवाद है लेकिन लेख के अन्त में यह ज़िक्र कर देना कहीं बेहतर होता कि स्कर्वी विटामिन बी की कमी से होता है और बेरीबेरी विटामिन बी-1 (थाईमीन) की कमी से।

और दूसरे लेख ने तो एंटीबायोटिक बाज़ार और इसकी कार्यप्रणाली के कई नए आयाम खोले। हमें पैरा-मेडिकल की पढ़ाई में बैक्टीरिया, फफूँद और वायरस की संरचना तो पढ़ाई जाती है लेकिन ये आपस में किस तरह से व्यवहार करते हैं? एंटी बैक्टीरियल दवाओं के नाम, किस रोग के लिए कौन-सी दवा और उनके विकल्प तो बताए जाते हैं, लेकिन दूरगामी परिणाम और शरीर पर असर? मैं अपनी बात करूँ तो स्नातक के शुरुआती वर्षों में हमने फार्मेकोलॉजी में दवाओं के नाम और केमिकल संरचना को रट लिया। मेडिसिन में दवाओं के समूह में आने वाली दवाओं और रोगों के नामों को रट लिया। लेकिन ऐसी किसी चर्चा या शोधपत्रों को पढ़ने का संयोग ही नहीं बन पाया।

इस तरह के शोध और चर्चाओं से डॉक्टर तो शायद परिचित होंगे लेकिन उससे जुड़े हुए प्रोफेशन जैसे नर्स, फिज़ियोथेरेपिस्ट, पैरा मेडिकल, फार्मासिस्ट और आम लोगों में जागरूकता बहुत ज़रूरी है क्योंकि समाज में उनका प्रतिशत और पहुँच डॉक्टरों से ज़्यादा है। इसलिए 'ओवर द काउंटर' दवाओं को नियंत्रित करना भी बहुत ज़रूरी है। लगभग हर दवा थोड़ी-सी जान-पहचान होने पर बिना पर्चे के खरीदी जा सकती है। उस पर से हमारा यह रवैया कि 10 की जगह 5 गोलियाँ ही खाएँगे वो भी अपनी मनमर्ज़ी से। सत्यजित रथ ने बिलकुल सही कहा है कि "हर टेक्निकल मुद्दे का एक सामाजिक-आर्थिक पक्ष होता है।"

पारुल बत्रा दुग्गल
अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन
भोपाल, म.प्र.

शैक्षणिक संदर्भ अंक-103 में सुशील शुक्ल का आलेख *आधी हकीकत-आधा फसाना* पढ़ा। पढ़कर मन में कुरमुरी-सी महसूस हुई। दरअसल बहुत दिनों बाद इतना सुन्दर व आत्मीय आलेख पढ़ने में आया। आपने जो लम्हे जोड़े हैं उन्हें पढ़ने के बाद मैं भी कुछ और हो गया हूँ। कल हमने बहुत दिनों बाद अपने पदचाप में धरती की छुअन महसूस की। हवा में झूमते पेड़ों के रंग कुछ ज़्यादा ही हरे लगे और बन्दरों के बाल गहरे सुनहरे। भागीरथी की कल-कल छल-छल संगीत में बदल गई।

दिलो-दिमाग में एक तरावट-सी छाई है। सचमुच भाई खुश होना कितना सरल है और हाँ, अपनी एक आरज़ू पर और खुशी हुई। अक्सर लोग कहते हैं कि मेरा बचपना अभी गया नहीं, न जाए तो अच्छा है। तो आपने जो यह कारनामा किया है उसके लिए आभार।

खजान सिंह

अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन

उत्तरकाशी, उत्तराखण्ड

काफी दिनों बाद *संदर्भ* का अंक-104 हाथ लगा। अक्सर *शिक्षक की कलम से* कॉलम में तीन लेखों को जगह मिलती है, इस बार चार लेख देखकर पहले से ज़्यादा अच्छा लगा और ये भी मन किया कि सम्पादक टीम को इस प्रयास के लिए धन्यवाद कहा जाए।

शिक्षक की कलम से के अन्तर्गत आए चारों ही लेख अपने आप में अनूठे और बेमिसाल लगे।

अंजना जी ने अपने लेख *नागरिकता के सन्दर्भ और आधार* में नागरिकता के जिन मायनों को उजागर करने की कोशिश की है वो सरकारी स्कूल के हालात को बयाँ करता है। आज सरकारी स्कूल में पहुँचने वाले ज़्यादातर बच्चे कैसे स्कूल तक पहुँच रहे हैं इसके पीछे संघर्ष की एक लम्बी कहानी है जो आम तौर पर अनजान ही रहती है या यूँ कहा जाए कि उसे देखने की कोशिश ही नहीं होती।

स्कूल 10:30 से 4:30 की समयावधि में सिमट कर रह जाता है जो कि न सिर्फ चिन्ता का विषय है बल्कि भयावह भी है।

चलते-चलते लेख बच्चों से बातचीत करते हुए उनके सवालों का बच्चों से ही जवाब निकलवाने का बहुत ही अच्छा उदाहरण है जो कि कमल मालवीय ने सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। बच्चों के साथ हुई यह बातचीत इस ओर भी इशारा करती है कि ज़िन्दगी के अनुभव और रोज़मर्रा की बोलचाल की भाषा में ही बहुत सारी जानकारियाँ भरी हुई हैं, बस बच्चों के साथ धैर्य के साथ काम करने की ज़रूरत है।

शिक्षा का अधिकार कानून की व्यथा बताता हुआ रश्मि जी का अनुभव आधारित आलेख आज 7 साल बाद भी शिक्षा के अधिकार कानून की पोल खोलता दिखाई देता है। आज भी सरकारी स्कूल के अध्यापकों को अक्सर बैठकों और प्रशिक्षणों में यह कहते सुना जा सकता है कि कानून के तहत बच्चों को पास करना अनिवार्य है, उन्हें मार नहीं सकते आदि। पर बहुत कम लोग यह कहते हुए सुने जाते हैं कि यही शिक्षा का अधिकार हर शिक्षक को शाला में आठ घण्टे बच्चों के साथ गुणवत्ता-पूर्ण शिक्षा के लिए प्रयास करने की भी बात कहता है।

महेश झरबड़े

मुस्कान, भोपाल, म.प्र.

मैं सातवीं कक्षा की विद्यार्थी होउँगी शायद। क्योंकि जो दृश्य मेरे चित्त में चमक रहे थे उनके पीछे शालेय अभ्यास ही हो सकता था, और कोई ज़रिया नहीं था।

मैं देख सकती थी, नदी, उसमें मछुआरे की छोटी-सी होड़ी, बड़े जहाज़, कभी इन्सान तो कभी सामान से लदालद। मैं देख सकती थी मार्ग के रूप में जल का उपयोजन और वो क्षण कौंध आया है चित्त में जब मुझे वो सवाल मन में पैदा हुआ था। पानी में कागज़ की होड़ी यानी नाव चलाना किसने ढूँढ़ा होगा?

मैं देख सकती हूँ उस क्षण में खड़ी अपनी छाया को जो उस सवाल से घबरा गई थी। अरे, ये सवाल कैसे आया मन में? लगा था। मुझसे ऐसा कुछ हो गया है जो अगर बड़े करें तो जायज़ एवं सलामत है। मुझे ये भी लगा था कि कोई मूल्यवान चीज़ मेरे हाथ लगी है। कुछ घबराहट, कुछ संकोच और कुछ गौरव के साथ मैंने उसे अपने 'अन्तर' की डिबिया में सम्हाल कर रख दिया था।

याद आता है उस एक सवाल के साथ उमड़ आए संवेग और कुछ नए विचार, जो इसके पहले नहीं पनपे थे। हर वस्तु का कोई बनानेवाला होता है यह बात तो हम जानते-मानते हैं। पर, उस क्षण मुझे ख्याल आ रहा था कि वस्तु के पीछे विचार, विचार का जाँचना-परखना तथा ऐसा करने वाला कोई बन्दा हो सकता है। मैं चकित थी। एक सवाल के पीछे कतार लगाए नए सवाल और नए ख्याल को अपने में देखकर।

डिबिया में सँजोए उस मूल्यवान क्षण का पुरी तरह खुलना हो ना सका, लेकिन वह बूँद-बूँद टपकता रहा। लगता है उसी रस ने मेरे जीवन-रस को सींचा है जो कई तूफानों में मुझे बनाए रखा।

आश्चर्य-मुग्ध हूँ उस क्षण को अपने भीतर इतना स्पष्ट देखकर। डिबिया में छिपे इस मोती की गोताखोर मैं बन पाई उस ऑक्सीजन सिलेण्डर की वजह से जो *संदर्भ*-103 में छपा है। नाम है: *आधी हकीकत आधा फसाना*।

छाया उपाध्याय
गुजरात

शैक्षणिक *संदर्भ* का अंक-102 कुछ देरी से प्राप्त हुआ। अंक की बेसब्री से प्रतीक्षा रहती है। *फेल न किया तो क्या किया* - सी एन सुब्रम्हण्यम् के आलेख का शीर्षक उत्सुकता जगाता है। उन्होंने आकलन पद्धति की समीक्षा करते हुए सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की विशिष्टता को उजागर करने का प्रयास किया है। वास्तव में हम किसका आकलन करना चाहते हैं, कौन फेल हो रहा है, इसकी स्पष्टता ही नहीं है। बच्चों को केवल शिक्षा के उत्पाद के तौर पर देखा जाता है। इसलिए पास-फेल का परिणाम बच्चों को ही प्रभावित करता है। हमारे यहाँ शिक्षा का तरीका पुराने समय से स्मृति आधारित रहा है। बच्चों से अपेक्षा की जाती है कि शिक्षक जो बताए या पुस्तकों में जो हो उसे वे स्मृति में उतार लें, भले ही बात उनकी समझ में आए या नहीं। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन बच्चों के शैक्षिक प्रयासों के प्रभाव को देखने का माध्यम है जिससे बच्चे 'सीख गए' को उपलब्धि के तौर पर देख सकें।

सविता सोहित व शिवानी तनेजा का आलेख *बहुभाषीय कक्षा में व्याकरण के नियमों को ढूँढ़ना* भाषा शिक्षण प्रक्रिया का एक बेहतरीन प्रयोग लगा। कक्षा में बहुभाषा जानने वाले बच्चे किस तरह भाषा शिक्षण के संसाधन के तौर पर देखे जा सकते हैं, इसको समझने में मदद मिली। हिंदी व्याकरण आम तौर पर बच्चों के लिए कठिन मानी जाती है, लेकिन इस शिक्षण प्रक्रिया का कमाल है कि सहजता से बच्चे व्याकरण के नियमों को जानने-समझने लगते हैं। अन्य सामग्री जैसे *इमला और भाषा शिक्षण*, *विज्ञान शिक्षण में ज्ञान का निर्माण* भी पठनीय और सारगर्भित लगी। वास्तव में *शैक्षणिक संदर्भ* के समस्त अंक शिक्षा के विविधतापूर्ण आयामों से ओतप्रोत होकर पठनीय तथा मननीय होते हैं। शिक्षा बिरादरी से जुड़े लोगों के लिए इसका हरेक अंक कुछ

नवीन, लीक से हटकर, एक अलग ही सोच को पोषित करता है, जो 'शैक्षिक खाद-पानी' के रूप में काम करते हैं। *संदर्भ* की अलग ही प्रतिष्ठा है। चित्रों तथा रेखांकनों के बारे में सौन्दर्यबोध अत्यन्त विशिष्ट व काबिले तारीफ है। पूरी टीम को साधुवाद।

सिद्धार्थ कुमार जैन
अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन
भोपाल, म.प्र.

संदर्भ का अंक-103 एक बार फिर पलटकर देखा और टेक्स्ट को अंडरस्टैण्ड करना क्या होता है, फिर से, नए सिरे से सीखा। वैसे तो सुशील शुक्ल का लेख *आधी हकीकत आधा फसाना* कक्षा में एक बार पढ़ा था पर वह आधी हकीकत थी... ये कल रात जाना। हम किस माहौल और मूड में टेक्स्ट को पढ़ते हैं उस पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। टेक्स्ट को समझना और ये बात हमें बच्चों को समझाना पड़ेगी वरना बिना पानी की नदी का रेत हो जाना, नीले आसमान से आने से पानी का नीला होना जैसी कल्पनाएँ एक लेखक को ही गुदगुदी करती हैं। टेक्स्ट को हम सही मायनों में तब समझते हैं जब उसमें से हम अपने कुछ अर्थ निकालते हैं। जैसे कि नदी के पानी को चद्दर की तरह हिलाकर देखने की कल्पना को आगे बढ़ाकर उस चद्दर को फोल्ड करके हम घर ले जाएँ और एक बच्चा चाँद-सितारे छपे उस चद्दर को ओढ़कर सोने की ज़िद करे। आपने देखा होगा कि ज़्यादातर बच्चों की सबसे बड़ी समस्या यही है – अगर टेक्स्ट को वे सही मूड में पढ़ेंगे, समझकर पढ़ेंगे तो उनके पास आइडियाज़ की कमी कभी नहीं होगी।

आपको क्या लगता है?

शशि शेट्टी
इलस्ट्रेटर, नई दिल्ली

कब खत्म हो रहा है आपका सदस्यता शुल्क?

आम तौर पर *संदर्भ* के लिफाफे पर एक स्टिकर पर आपका पता, सदस्यता क्रमांक व समाप्ति का अंक क्रमांक लिखा होता है। उदाहरण के लिए

SAND 12854 Ends On 106

इसका मतलब है आपका सदस्यता क्रमांक 12854 है और सदस्यता अंक 106 पर समाप्त हो रही है।

यानी 106वाँ अंक प्राप्त होने से पहले आप अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करवा लीजिए।

✦✦✦✦✦